भक्तिकाल की भक्ति परंपरा में तुलसीदास का सांस्कृतिक स्थान

राजकीय महाविद्यालय खरखोदा (सोनीपत)

डॉ बीना रानी

असिस्टेंट प्रोफेसर (हिंदी)

तुलसीदास भक्तिकाल की राम काव्यधारा परंपरा के प्रतिनिधि कवि है। तुलसी ने रामचरितमानस के ज़रिए भगवान राम की भक्ति को जनमानस तक पहुँचाया है। जहाँ तुलसी का साहित्य भक्ति-भावना जागृत करता है वही सांस्कृतिक चेतना का भी प्रसार करता है। तुलसीदास की सांस्कृतिक और लोकवादी दृष्टि मध्यकाल के अन्य कवियों से अधिक व्यापक और गहरी रही है। तुलसी अपने काल की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक स्थिति को अनदेखा नहीं करते हैं वहां उस पर भी अपनी कलम चलाते हैं।

तुलसीदास भक्ति काल की उस परंपरा से संबंध रखते हैं जो सामंती मूल्यों से ग्रस्त काल था। इस समय वर्ण-व्यवस्था का कठोर प्रचलन था। और नारी की स्थिति भी अच्छी नहीं थी। तुलसी पारम्परिक मूल्यों से प्रभावित दिखते हैं। उस सामंती समाज में तुलसी नए मूल्यों को स्थापित करने की कोशिश करते हैं। तुलसी भक्ति के स्तर पर वर्ण-व्यवस्था को बिल्कुल स्वीकार नहीं करते, इसलिए उन्होंने रामचरितमानस से 'शंबूक वध' प्रसंग को निकाल दिया है और शबरी को 'भामिनि' कहकर संबोधित करते किया।

तुलसीदास अपने समय के सर्वश्रेष्ठ व सिद्ध कवि थे। उनकी प्रतिभा, उनकी कल्पना विलक्षण थी, तीव्र एवं उदात्त थी। जिसमें वे भविष्य के अंतराल को सांस्कृतिक दृष्टि से देखते हैं उन्होंने भारतीय जनमानस को ऐसे कृतियों प्रदान की जो उनका मार्गदर्शन करने में सफल रही और भारतीय जनमानस की भावी पीढ़ी को भी सफल करने में सिद्ध रही। उन्होंने अपने विस्तृत अध्ययन और मनन से जिस तत्व की प्राप्ति की हुई उसकी विवृत्ति विविध काव्यरूपों मैं प्राप्त होती रही।

तुलसी के युग का समाज मूलतः दो वर्गों में बंटा हुआ था हिन्दू और मुसलमान। मुसलमान विदेशी तथा विधर्मी होते हुए भी शासकथा।हिन्दू समाज में अव्यवस्था, अशांति, अस्तव्यस्ता, छिन्न-भिन्नता, अनैतिकता का आधिपत्य स्थापित था। विदेशी सत्ता आंतरिक क्षीणता से प्राप्त संकट का वर्णन करते हुए लिखा है तुलसीदास के सचेतन क्रियाकलाप के युग से पूर्व, भारत या ठीक-ठाक हिन्दू समाज ने अपने को, दो संकटों के बीच पाया एक ओर तो असहाय अत्याचार, लूटपाट और शारीरिक यंत्रणा की आपदा थी, जो मुसलमान शासकों की ओर से पाँच शताब्दियों से अधिक समय से धारा के रूप में भारत में प्रवाहित हो रही थी और जो अकबर के शासन में कुछ समय को शिथिल हुई और दूसरी ओर मुस्लिम प्रभाव से महत्वपूर्ण ढंग से प्रसूत धार्मिक विरोधी शाखाओं से उत्पन्न हिन्दू समाज की आंतरिक छिन्न-भिन्नता का संकट। इन सबने हिन्दू समाज की एकता को छिन्न-भिन्न कर उसे और भी

दुर्बल बनाया। इस प्रकार एक ओर तो हिन्दू समाज मुसलमानों के अमानुषीय प्रकार के दूषणों के प्रताड़नों तथा दूसरी ओर हिन्दुओं में व्यापक शास्त्रविरोधी अवगुणों से आहत होकर संयम नियम के आधार पर बंधी हुई मर्यादाओं का उल्लंघन करके पूर्णतया मर्यादाहीन हो चुका था। उस समय के समाज में कौटुम्बिक स्नेह का स्थान स्वार्थपरता तथा जनस्नेह का स्थान ईर्ष्या, द्वेष तथा संकीर्णता ने ले लिया था। सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन आ चला था। इस समय दूसरे के धन को हडप करने वाला सयाना, मिथ्याभाषी ही गुणवान पर `हानिकर्ता ही गौरवशाली माना जाने लगा था–

'सोई सयान जो पर धन हारी। जो कर दंभ सों बड़ आचारी।।1

गोस्वामी तुलसीदास के अंतःपटल को उद्वेलित कर दिया और उन्होंने इस के मूल में जाकर इस समस्त व्यवहार को एक आदर्श नीति पर प्रतिष्ठित करने के लक्ष्य से आदर्श मर्यादा की स्थापना हेतु भारतीय हिन्दू जनता के मोहजनित दुःख का निवारण करने का बीड़ा उठा लिया। तुलसीदास भारतीय संस्कृति के पक्के अनुयायी थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि इस समस्या के हल का एक मात्र उपाय सांस्कृतिक चेतना के पुनरूद्धार के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं हो सकता। शुक्ल जी ने तुलसीदास द्वारा रचित 12 ग्रंथों को स्थानदियाहै।रामललानहछू, वैराग्यसंदीपनी, गीतावली, रामज्ञाप्रश्न, जानकीमंगल, रामचरित्रमानस, पार्वतीमंगल, विनयपत्रिका, कृष्णगीतावली, बरवैरामायण, दोहावली और कवितावली, जिनमें 'हनुमान बाहुक' भी सम्मिलित हैं। इन कृतियों के माध्यम से ही तुलसीदास ने अपने मन के भावों–विचारों का वर्णन किया तथा समाज को एक नई दिशा दी। तुलसीदास के समय के समाज में सामाजिक स्तरण की पद्धति का विघटन हो चुका था।

तुलसीदास समाज की दीन–हीन दशा से अतीव असंतुष्ट थे। वे इसे पूर्ण रूप से उन्नत देखना चाहते थे, इसी हेतु उन्होंने व्यक्ति को समाज से अधिक महत्व देकर नैतिकतापूर्ण आचरण को अपनाने के लिए अधिक बल दिया। उन्हें विश्वास था कि पूरा समाज नैतिक नियमों पर आधारित है, किन्तु उसकी इस नियमबद्धता में व्यक्ति के कर्मों का भी हाथ है। दोनों के पार्थक्य से सामाजिक एवं सांस्कृतिक दोनों के सामंजस्य से सामाजिक उत्थान हो सकता है। उन्होंने अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जिस सामाजिक नीति का सहारा लिया उसका आधार पुराण तथा स्मृतियाँ थी। मनु स्मृति में आश्रमों की संख्या चार मानी गई जिनमें ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास ये चार मान्य हैं। प्रथम आश्रम में समाज व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है तो दूसरे में व्यक्ति सामुदायिक हित तथा कल्याण के कार्यों में तत्पर होकर आत्मविकास में निरत रहता है। तृतीय आश्रम वानप्रस्थ है इसमें व्यक्ति समाज से अपने संबंधों को कुछ–कुछ पृथक रखकर परम सत्ता के साथ निजात्मा के संपर्क की चेष्टा करता है। संन्यास में व्यक्ति की आजीविका समाज पर आधारित होती है किन्तु उसका मन सदैव समाज के कल्याण की भावना से ओत–प्रोत रहता है।

तुलसीदास कालीन समाज व्यवस्था को सहज ही आंका जा सकता है जिसमें सामाजिक मान्यताओं की पूर्ण अवेहलना हो चुकी थी। तुलसीदास जी ने रामचरित्रमानस में स्वयं ही कहा है–

कलिकाल बिहाल किए मनुजा। नहिं मानत क्वै अनुजा तनुजा।

नहिं तोष विचारन सीतलता। सब जाति कुजाति भए भंगता।2

तुलसी इस तथ्य से पूर्णतया अवगत थे कि जिस समाज में व्यक्ति इस प्रकार से नीतिहीन, परिवार स्वार्थपरता से अंध तथा समाज तामसीवृत्तियों वाले दुर्जन लोगों से भरपूर हो और जिसमें बड़ों का आदर विद्वानों का सम्मान, अत्याचार का दलन करने वाले शूरवीरों के प्रति श्रद्धा आदि भव उठ जाए, जहाँ परम्परागत मान्यताओं की अवहेलना तथा उत्तम सुसंस्कृत कर्मों का अभाव हो, वह समाज कभी शांत नहीं रह सकता। समाज की पूर्ण शांति के लिए व्यक्ति तथा परिवार का नैतिक मर्यादा पर आधारित होना अतिआवश्यक है। तुलसीदास ने समाज में व्यवस्था की स्थापना के लिए जिन नैतिक आदर्शों का अपने साहित्य में संकेत किया है, उन्हें तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है। वे वर्ग 1. वैयक्तिक नीति, 2. पारिवारिक नीति तथा 3. सामाजिक नीति के नाम से जाने जाते हैं। व्यक्ति का अपने प्रति, मनुष्य के प्रति, पारिवारिक सदस्यों के प्रति तथा समाज में विभिन्न प्रकृतिवाले व्यक्तियों के प्रति किस नीति का व्यवहार हो आदि ही इन वर्गों का विचारणीय विषय होगा।

वैयक्तिक नीति के अंतर्गत तुलसीदास के विचार उनकी इस पंक्ति में अंतर्निहित हैं-'दैहिक, दैविक भौतिक तापा, रामराज काहू नहि व्यापा।' जिन आदर्शों पर आधारित जीवन व्यतीत करने से व्यक्ति उक्त अवस्था को प्राप्त कर सके तथा दुःखों से छुटकारा प्राप्त कर सके, वे आदर्श ही उनकी वैयक्तिक नीति के आधार तत्व माने जा सकते हैं। तुलसी ने उनका संकेत अपने साहित्य में प्रत्यक्ष रूप में अनेक स्थानों पर किया है। व्यक्ति से अभिप्राय पंच भौतिक स्थूलदेह, पंच कर्मेन्द्रियाँ, पंच ज्ञानेन्द्रियाँ। गोस्वामी तुलसीदास पंच भूतों के मिश्रण के संबंध को निस्सार बताते हुए तारा के प्रति राम की उक्ति में तथ्य उद्घाटन करते हैं-

"छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति उधम सरीरा।

प्रकट सो तनु तब आगे सोवा। जीव नित्व केहि लगि तुम्ह रोवा। 3

तुलसीदास कहते हैं कि मनुष्य की समस्त इन्द्रियाँ इसी मत के अधीन कार्यरत रहती हैं। मन से मनुष्य सुख और दुःख का अनुभव करता है। मन तथा इन्द्रियों की शुद्धि के साथ-साथ सात्विक बुद्धि के विकास की नीति पर बल दिया है। क्योंकि उस सूक्ष्म सात्विक बुद्धि द्वारा ही आत्मा संबंधी आचरण की निवृत्ति करके उसकी पहचान करवाने वाले नैतिक गुणों को विकसित किया जा सकता है। शास्त्रकारों ने सभी जीवों पर दया, क्षमा, अनसूया, शौच, अनायास, अदीनता, दानशीलता तथा अस्पृहा आदि आत्मिक गुणों को माना है। तुलसीदास ने यह अनुभव कर लिया था कि तत्कालीन व्यक्तिगत संघर्ष एवं सामाजिक विश्रृंखला का प्रमुख कारण व्यक्ति में उक्त गुणों का अभाव ही है। इसी हेतु उन्होंने अपने साहित्य में इन गुणों की मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हुए उन्हें अपनाने के लिए बार-बार प्रेरणा दी है। रावण में इन्हीं गुणों का अभाव और राम में इन्हीं का चरम विकास तुलसी की आत्मिक नीति का ही ज्वलंत पक्ष प्रस्तुत करता है। संतो के विषय में तुलसी ने लिखा है कि संतों की संगति तो बड़े भाग्य से मिलती है। जिससे बिना प्रयास किए ही संसार के बंधन से छुटकारा मिल जाता है। इस विषय में मानस में लिखा है-"बिनु सतसंग बिबेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।4

संतों ने परहित की भावना तथा दुष्टों में परपीड़न की पराकाष्ठा का संकेत करते हुए परहित मूलक कर्म को ही महत्व दिया है। "परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधिमाई।, उनका विचार है कि मनुष्य में परोपकार बुद्धि के साथ-साथ न्यायबुद्धि, दया, उदारता, दूरदृष्टि, क्षमा आदि अनेक सात्विक सद्गुणों की वृद्धि होनी अनिवार्य है। शास्त्रों में कर्म को जीवन की कर्मभूमि माना है। तुलसीदास भी कर्म को महत्व देते हैं।

विनयपत्रिका में तुलसीदास इसी उद्देश्य से राम के चरणों में प्रार्थना करते हुए कहते हैं-"काल करम, गति, अगति जीव की सब हरि हाथ तुम्हारे।5

तुलसीदास जी ने पुनर्जन्म की मान्यता को स्वीकार किया तथा साथ ही आश्रम व्यवस्था तथा संस्कारों को भी महत्व दिया है। पारिवारिक नीति के अंतर्गत पति-पत्नी के पारस्परिक संबंधों एवं सहयोग, बच्चों के प्रजनन तथा पारस्परिक सहानुभूति की भावना पर आधारित परिवार में ही सर्वप्रथम व्यक्ति अपने 'स्व को अर्थात् अपने को विकसित करने का अवसर प्राप्त करता है। तुलसीदास ने विधि निषेधात्मक प्रणाली का आश्रय लेते हुए कुछ बातों को अपनाने तथा कुछ का परित्याग करने की ओर संकेत किया है। उनका यह आदर्श परिवार मर्यादा पुरूषोत्तम राम का परिवार है। जिसमें समस्त आदर्श नैतिकता पर आधारित होने से सभी प्रकार से कल्याणोन्मुख कहे जा सकते हैं। गोस्वामी जी ने उस परिवार में कुछ हीनताओं का प्रदर्शन भी किया है जिनका संभवतः वे परित्याग ही चाहते थे।

तुलसीदास दाम्पत्य प्रेम को केवल काममूलक न मानकर धर्म नियंत्रित तथा आध्यात्मिक मानते थे। इसी हेतु उनकी पारिवारिक नीति केवल लौकिक व्यवहार संबंधी मान्यताओं पर आधारित न होकर, पारम्परिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक मान्यताओं से सम्बद्ध थी। पति-पत्नी संबंध, पितृ भक्ति, पिता-पुत्र संबंधी प्रेम, भातृभाव, गुरू-भक्ति आदि उनकी पारिवारिक नीति के विभिन्न पक्ष हैं।

तुलसी ने पति-पत्नी संबंध में अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है कि-पति-पत्नी संबंध के मूल में श्रद्धा, विश्वास अथवा प्रीति एवं प्रतीति को रखकर उसे एक असाधारण सौष्ठव प्रदान करने की चेष्टा की थी। भवानी और शंकर को श्रद्धा एवं विश्वास का प्रतीक मानकर तथा सीता और राम को 'गिरा अरथ जल बीचि सम ' कहकर एक अनुपम समैक्य की घोषणा करके जहाँ तुलसीदास आध्यात्मिक अद्वैत पर बल दे रहे हैं। वहाँ लौकिक व्यवहार में भी इसी अद्वैत को अपनाने की ओर संकेत कर रहे हैं। उन्होंने कुल साम्यता की ओर भी अपने विचार दिए। उनका मानना था कि विवाह तथा मैत्री समकुलों में ही होनी चाहिए। इसी का प्रतिपादन करते हुए उन्होंने कहा है-

*' 'जौ धरु कुलु होइ अनूपा। करिअ बिबाहु सुता अनुरूपा।*6

तुलसी की धारणा प्रतीत होती है कि पत्नी सदैव पतिव्रत्य का पालन करती हुई पति के निर्देशानुसार चलने वाली बनी रहे। पति की आज्ञा की अवहेलना तो एक ओर रही, तुलसी पारमार्थिक दृष्टिकोण से भी पति की अपेक्षा पत्नी का आगे बढ़-चढ़कर किसी बात का अतिशय रूप में प्रकट करना नीति विरूद्ध मानते हैं। पति के कर्तव्यों के विषय में भी तुलसी जी ने लिखा है कि पति को पत्नी की इच्छानुसार ही कार्य करना चाहिए जिससे जीवन सुचारूता, माधुर्य तथा एकरसता बनी रहे। तुलसीदास माता-पिता, गुरू तथा स्वामी के प्रति ऐसी भावना रखने के समर्थक हैं। शिव के मुख से उन्होंने स्पष्ट कहलवाया है-

'मातु पिता गुरू प्रभु कै बाणी। बिनहिं विचार करिअ सुभ जानी।7

तुलसी ने पुत्र की तरह ही पुत्री के जन्म को लक्ष्मी का प्रतीक मान कर पितृ पक्ष की ओर से उसके प्रति अगाध स्नेह का प्रदर्शन किया है। हिमालय के घर पार्वती के जन्म के समय सभी प्रकार की ऋद्धि-सिद्धियों का उपस्थित होना इसी नीति का परिचायक है-

'जत ते उमा सैल घर आई। सकल सिद्ध संपति तहं छाई।8

तुलसीदास जी ने त्याग, सहानुभूति वात्सल्य आदि गुणों को भातृत्व व्यवहार के लिए पोषक माना है। मानस में दो प्रकार के भ्राताओं का वर्णन मिलता है। एक ओर राम के भ्राता लक्ष्मण तथा भरत का और दूसरी ओर बालि के भ्राता सुग्रीव, रावण के भ्राता विभीषण और कुम्भकरण आदि का। बालि और रावण का विनाश अपने भ्राताओं के प्रति उनके क्रूर, नीतिहीन तथा कर्कश व्यवहार के कारण ही हुआ था। दूसरी ओर रामविजयी होकर लौटे इसका श्रेय उनके भ्राता लक्ष्मण तथा आज्ञाकारी भरत के त्याग निष्ठाभाव तथा सेवा भाव को है।

धर्म-नीति के अनुसार ज्येष्ठ भ्राता पितृ-तुल्य ही माना जाता है। अतिथि का आदर करना उसकी इच्छा को पूरा करना भारतीय नीति का लक्ष्य रहा है। यदि अतिथि विशेष गुण सम्पन्न मुनि आदि हो तो उसका मान भी विशेष ही करना चाहिए। तुलसीदास जी ने ईष्र्या से बचकर रहने का उल्लेख कई स्थानों पर किया मानस में लिखा है-"ईरषा के बस होहुना जो चाहहु सुख सांति।9

तुलसीदास जी ने भारतीय संस्कृति के अनुसार निंदा को भी बुरा माना। समाज में मित्र, शत्रु, दुष्ट सज्जन, संत, महात्मा, परोपकारी, मूर्ख, बुद्धिमानी विनयी अनेक प्रकार के व्यक्ति होते हैं जिनके साथ विभिन्न प्रकार का व्यवहार ही नीति सम्मत माना जाता है। तुलसीदास भारतीय संस्कृति और सभ्यता के अनन्य भक्त थे। उन्होंने सामाजिक नीति में उसी आदर्श को अपनाया जो सामाजिक संगठन के लिए भारतीय संस्कृति का मूल आदर्श रहा है। उनकी सामाजिक नीति में समाज को वास्तविक रूप में सुदृढ़ बनाने के तत्व निहित हैं। उसमें वैषम्य तथा वैर का पूर्णतः अभाव है-"बयरू न कर काहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई।।10

तुलसीदास ऐसे समाज को देखना चाहते थे, जिसमें सभी प्रसन्न हो सभी सुखी हों, परस्पर वैर-भाव न हो। प्रेम सहानुभूति उदारता आदि सात्विक गुणों की पूर्ण व्याप्ति हो। इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्होंने अपने साहित्य में प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार से विधि-निषेध मूलक नैतिक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है। गोस्वामी तुलसीदास ने जाति अपमान को सर्वाधिक दुःखमय मानकर उसकी अपेक्षा मृत्यु को श्रेष्ठ माना है। तुलसी के अनुसार जो व्यक्ति अपने से भक्ति, ज्ञान, वैराग्य आदि पारमार्थिक गुणों में श्रेष्ठ हो उसके साथ मित्रता का व्यवहार करना नीति सम्मत होता है, क्योंकि उसके साथ मित्रता होने से व्यक्ति में अभिमान का अभाव रहेगा और वह उसके उच्चादर्श को अपनाकर अपने जीवन को सफल बना सकेगा। तुलसीदास इस प्रकार की मित्रता की अवस्था के परिणाम को बताते हुए कहते हैं-

बड़ो गहे ने होत बड़ ज्यों बावन कर दंड।

श्री प्रभु के संग सो बढ़ो गयो अखिल ब्राह्मण्ड।।' 11

निष्कर्ष:

निष्कर्ष: यह कहा जा सकता है भक्ति काल में तुलसीदास के सांस्कृतिक चेतना में उनका विशेष स्थान है वे कहते हैं कि भोग के आदर्श को केन्द्र बनाकर जिस उन्नति की अपेक्षा की जाती है उसकी संभाव्यता केवल प्रतियोगिता, प्रतिद्वंद्विता, वैमनस्य और संघर्ष अंतराल में ही होती है। तुलसी के अनुसार कायिक, मानसि, बौद्धिक आदि विभिन्न नियमों का पालन करके व्यक्ति विकास के लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। आश्रम व्यवस्था तथा संस्कार इसी विकास के क्रमिक सोपान हैं। आत्मा का परिष्कार तुलसी के मत में अनेक जन्मों की साधना का परिणाम है। इसी हेतु पुनर्जन्म, कर्म सिद्धांत तथा भाग्यवाद का उन्होंने अपनी नीति में पूर्ण महत्व माना है। सर्वांगीण नैतिक विकास से ही पारिवारिक संगठन तथा सामाजिक समानता सहज ही प्राप्त हो जाती है। पारिवारिक विघटन के दृष्टिकोण से ईर्ष्या, कपट, आदि अवगुणों का त्याग करना तुलसी आवश्यक मानते हैं। उनका पूर्ण विश्वास था कि व्यवहार में करूणा मैत्री तथा उपेक्षा नामक गुणों से सामाजिक संघर्ष से बचा जा सकता है। तुलसी की लोक नीति कर्म पर आधारित होने से वर्णाश्रम व्यवस्था की पूर्ण समर्थक है।

तुलसीदास कहते हैं कि मनुष्य का अंतःर्जीवन, बाह्यजीवन, समान दृष्टि तथा समाज की सुखमयता तभी संभव हो सकती है जब मानव संकीर्ण चिंतन धारा का परित्याग करके समान दृष्टिभाव को अपना कर प्रत्येक कार्य में आध्यात्मिक दृष्टि को धारण कर लें। यही दृष्टिकोण उसके व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवन के सभी प्रकार के विरोधों में सामंजस्य स्थापित करके वैषम्य में साम्य की प्रतिष्ठा कर सकता है तथा इससे ही मानव जाति में प्रेम, शांति, सौहार्द की स्थापना हो सकती है।

तुलसीदास भारतीय लोकनीति को आचरण प्रधान घोषित करके मनुष्य की अंतवृत्तियों के उत्कर्ष पर विशेष बल देते हैं समाज के प्रत्येक घटक से आत्मशुद्धि की आशा रखते हुए उससे त्याग नामक गुण की अपेक्षा करते हैं। उनके सभी पात्र राम, लक्ष्मण, भरत आदि सभी त्याग और आत्मनियंत्रण की साकार प्रतिमाएँ हैं। इस प्रकार सर्वत्र प्रेम शांति और एकता की स्थापना करना ही तुलसी के अनुसार उनकी लोकनीति और मर्यादावाद का मूलाधार है।

संदर्भ ग्रंथ

1. मानस, उत्तरकाण्ड, पृ. 98, 5
2 वही, दोहा 102, छंद-3-5
3. मानस, कि. काण्ड, पृ. 11, 4-5
4. मानस, अयोध्याकाण्ड, पृ. 275, 4
5 मानस, बालकाण्ड दोहा-3, 7-9
6 विनयपत्रिका, पद 112

7. मानस, बालकाण्ड, पृ. 71, 3

निष्कर्ष:

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि भोग के आदर्श को केन्द्र बनाकर जिस उन्नति की अपेक्षा की जाती है उसकी संभाव्यता केवल प्रतियोगिता, प्रतिद्वंद्विता, वैमनस्य और संघर्ष अंतराल में ही होती है। तुलसी के अनुसार कायिक, मानसि, बौद्धिक आदि विभिन्न नियमों का पालन करके व्यक्ति विकास के लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। आश्रम व्यवस्था तथा संस्कार इसी विकास के क्रमिक सोपान हैं। आत्मा का परिष्कार तुलसी के मत में अनेक जन्मों की साधना का परिणाम है। इसी हेतु पुनर्जन्म, कर्म सिद्धांत तथा भाग्यवाद का उन्होंने अपनी नीति में पूर्ण महत्व माना है। सर्वांगीण नैतिक विकास से ही पारिवारिक संगठन तथा सामाजिक समानता सहज ही प्राप्त हो जाती है। पारिवारिक विघटन के दृष्टिकोण से ईर्ष्या, कपट, डाह आदि अवगुणों का त्याग करना तुलसी आवश्यक मानते हैं। उनका पूर्ण विश्वास था कि व्यवहार में करूणा मैत्री तथा उपेक्षा नामक गुणों से सामाजिक संघर्ष से बचा जा सकता है। तुलसी की लोक नीति कर्म पर आधारित होने से वर्णाश्रम व्यवस्था की पूर्ण समर्थक है।

तुलसीदास की मान्यता थी कि मनुष्य का अंतःर्जीवन, बाह्यजीवन, समान दृष्टि तथा समाज की सुखमयता तभी संभव हो सकती है जब मानव संकीर्ण चिंतन धारा का परित्याग करके समान दृष्टिभाव को अपना कर प्रत्येक कार्य में आध्यात्मिक दृष्टि को धारण कर लें। यही दृष्टिकोण उसके व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवन के सभी प्रकार के विरोधों में सामंजस्य स्थापित करके वैषम्य में साम्य की प्रतिष्ठा कर सकता है तथा इससे ही मानव जाति में प्रेम, शांति, सौहार्द की स्थापना हो सकती है। तुलसीदास भारतीय लोकनीति को आचरण प्रधान घोषित करके मनुष्य की अंतवृत्तियों के उत्कर्ष पर विशेष बल देते हैं समाज के प्रत्येक घटक से आत्मशुद्धि की आशा रखते हुए उससे त्याग नामक गुण की अपेक्षा करते हैं। उनके सभी पात्र राम, लक्ष्मण, भरत आदि सभी त्याग और आत्मनियंत्रण की साकार प्रतिमाएँ हैं। इस प्रकार सर्वत्र प्रेम शांति और एकता की स्थापना करना ही तुलसी के अनुसार उनकी लोकनीति और मर्यादावाद का मूलाधार है।

संदर्भ:

1. मानस की रूसी भूमिका, तुलसीदास का युग, पृ. 8
2. मानस, उत्तरकाण्ड, पृ. 98, 5
3. वही, दोहा 102, छंद-3-5
4. मानस, कि. काण्ड, पृ. 11, 4-5
5. मानस, अयोध्याकाण्ड, पृ. 275, 4
6. मानस, बालकाण्ड दोहा-3, 7-9
7. विनयपत्रिका, पद 112

8. मानस, बालकाण्ड, पृ. 71, 3

9. वही, पृ. 77, 3-5

10. वही, पृ. 65, 6

11. मानस, अध्योध्याकाण्ड, पृ. 38

12. मानस, उत्तरकाण्ड, रामराजय प्रकरण

13. दोहावली, पृ. 532

14. तुलसीदास हितोपदेश, पृ. 65

8. वही, पृ. 77, 3-5

9. वही, पृ. 65, 6

10. मानस, अध्योध्याकाण्ड, पृ. 38

11. मानस, उत्तरकाण्ड, रामराजय प्रकरण